ज्ञानविविधा
कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-4 (Oct.-Dec.) 2025
Page No.- 29-34
©2025 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

Author's :

1. गुरमीत
शोधार्थी, (दर्शन शास्त्र विभाग), गुरुकुल काँगड़ी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार.

2. डॉ. बबीता शर्मा
शोध निर्देशिका, असि. प्रो.,
दर्शन शास्त्र विभाग, क. गु. परि.
गुरुकुल काँगड़ी समविश्वविद्यालय,
हरिद्वार.

Corresponding Author :

गुरमीत
शोधार्थी, (दर्शन शास्त्र विभाग), गुरुकुल काँगड़ी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार.

शंकराचार्य के दर्शन में परम तत्त्व संबंधी अवधारणा

शोध सार : भारतीय दर्शन में अद्वैत वेदांत दर्शन का प्रमुख स्थान है। यहां हम अद्वैत वेदांत में परम तत्त्व की विवेचना कर रहे हैं। अद्वैत से तात्पर्य है परम तत्त्व एक ही है, इसके अतिरिक्त अन्य किसी की सत्ता नहीं है। आचार्य शंकर ने ब्रह्म को ही परम तत्त्व कहा है । ब्रह्म शब्द बृह धातु से निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है बढ़ना या निरंतर वृद्धि करना । शंकर के अनुसार ब्रह्म ही जगत् का मूल कारण है जो मूल रूपों में प्रकट होने पर भी निर्गुण, निराकार और निर्वयव ही रहता है । ब्रह्म सबका आदि कारण और मूल स्रोत है । शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्म की सत्ता अनंत और अखंड है । ब्रह्म को सच्चिदानंद की संज्ञा दी गई है । शंकर ब्रह्म को पारमार्थिक सत्ता मानते हैं । शंकर के अनुसार ब्रह्म सत्य है, निर्गुण है और देशकालादि बंधन से मुक्त है। ब्रह्म और जीव में कोई भेद नहीं है । ब्रह्म इस संसार के कर्ता,पालक और संहारक हैं । अतः हम कह सकते हैं कि ब्रह्म के अतिरिक्त किसी अन्य की नित्य सत्ता नहीं है ।

मुख्य शब्द- अद्वैत, वेदांत, धर्म, दर्शन, ब्रह्म ।

आचार्य शंकर का जन्म 788 ई में केरल प्रान्त के कालड़ी ग्राम में हुआ और देहावसान 820 ई में केदारनाथ में हुआ । आचार्य शंकर के जन्म के पूर्व भारत की सामाजिक और धार्मिक दशा अत्यंत ही सोचनीय थी। पांचवी, छठवीं और सातवीं शती में बौद्ध धर्म की दार्शनिक उपलब्धियों तथा असाधारण ऐश्वर्य के दर्शन होते हैं। बौद्ध दर्शन के समक्ष ब्राह्मण धर्म की गरिमा भोर के तारे की भाँति फीकी पड़ गई थी। बौद्ध धर्म के प्रबल झंझावात में ब्राह्मण धर्म की ज्योति बुझने को हो रही थी, कि उसे आचार्य शंकर का सहारा मिल गया। ब्राह्मण धर्म के पुनरुज्जीवन का सर्वाधिक श्रेय आचार्य शंकर को ही दिया जाता है, बौद्ध धर्म के निरन्तर प्रहारों से ब्राह्मण धर्म बहुत क्षत-विक्षत और विकेन्द्रित हो चुका था। मीमांसको ने जिसमें कुमारिलभट्ट सर्व प्रमुख थे, पुनः इसकी स्थापना के लिये प्रयत्न किये। मीमांसकों ने वैदिक दर्शन की प्रतिष्ठा तो की, किन्तु

उन्होंने उपनिषदों के तत्त्वग्राही चिन्तन की अपेक्षा ब्राह्मण ग्रंथों के कर्म काण्ड की स्थापना में ही अपनी शक्ति और समय का प्रयोग किया। फलतः परिस्थितियों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया।

वैदिक धर्म को सही अर्थ में प्रतिष्ठा दिलाई आचार्य शंकर ने यही कारण है कि अद्वैत के प्रख्यात विद्वान मधुसूदन सरस्वती ने आचार्य शंकर को शिव का अवतार मानकर उनकी अभ्यर्थना की है ।

दर्शनशास्त्र का प्रमुख लक्ष्य है- परम तत्त्व के स्वरूप एवं उसके गुणों का विवेचन करना । परमतत्त्व क्या हैं? वह जड़ है या चेतन, निराकार है या साकार तथा उसके अन्य लक्षण क्या है आदि का विवेचन दर्शनशास्त्र करता है । सृष्टि के प्रारंभ से ही मनुष्य में सृष्टि के मूल तत्त्व को जानने की जिज्ञासा रही है । वह अनेकताओं के मध्य आधारभूत एकता को जानना चाहता है ।

अद्वैत वेदान्त की विशेष मान्यता का कारण उसकी दार्शनिक प्रौढ़ता भी है । अद्वैत वेदांत की मुख्य मान्यतायें तीन या चार रही है:-

1.एक मात्र तात्विक पदार्थ निर्गुण, कूटस्थ, नित्य सच्चिदानंद ब्रह्म है ।

2. जीव और ब्रह्म एक ही है ।

3.जीव और ब्रह्म में भी भेद दिखाई देता है, अथवा जीव जो बंधनग्रस्त दिखाई पड़ता है उसका कारण अविद्या है ।

4.यह दृश्यमान जगत् माया का कार्य मिथ्या है । ऋग्वेद के दशम मंडल में स्पष्टतः "एकेश्वरवाद की भावना का विकास दिखाई देता है । ऋग्वेद में कहा गया है "एकम् सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' अर्थात् परमतत्त्व एक है विद्वान उसे अनेक नाम से पुकारते हैं । ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है-

"ईशा वास्यमिदं सर्वं यतकिंच्च जगत्यां जगत् ।

ईश्वर से ही सब कुछ परिपूर्ण है सारा जगत् ईश्वरमय है । सृष्टि की अनेकता विभिन्नता आदि का आधार और आदि कारण ईश्वर है । उपनिषदों में ऐसे अनेक मंत्र और श्लोक मिलते हैं जो स्पष्ट रूप से परम सत् का प्रतिपादन करते हैं जिसे वे आत्मा या ब्रह्म के नाम से पुकारते हैं । उदाहरण स्वरूप 'सदैव सौम्येदम अग्र आसीत' अर्थात् यह है कि आरंभ में जब कुछ भी नहीं था केवल आत्म तत्त्व ही था, आत्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था ।

अद्वैत वेदांत में ब्रह्म का स्वरूप –शंकर वेदान्त का मूलाधार,मूलस्त्रोत उपनिषद साहित्य है । सर्वप्रथम हम कह सकते है कि ब्रह्मज्ञान के संबंध में स्वयं शंकर ने उपनिषदों को सर्वोच्च और स्वतंत्र आप्तवाक्य के रूप में माना है । उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि परमात्मा या ब्रह्म केवल वेदान्त अर्थात उपनिषदों द्वारा ही जाना जा सकता है ।

अद्वैतवाद का मुख्य सिद्धान्त है कि जगत् में एक ही परम तत्त्व है । उसे छोड़कर कोई भी दूसरी सत्ता विद्यमान नहीं है । परम आधार वही हो सकता है जो कहीं से व्यावृत न हो, साथ ही जिसका आधार होना है उससे विलक्षण होना भी आवश्यक है । अतः वह कहीं अनुगत नहीं होना चाहिए । अतः अव्यावृत तथा अननुगत वस्तु ही परम तत्त्व हो सकती है और ऐसी वस्तु अद्वितीय ही होगी ।

शंकराचार्य के अनुसार परम तत्त्व एक ही है । समस्त विश्व उसी चेतना से व्याप्त है। उस निर्विकल्प, निरुपाधिक, निर्विकार व्यापक चेतन सत्ता का ब्रह्म नाम है। ब्रह्म ही एकमात्र तत्त्व है जिसका चैतन्य गुण नहीं वरन् स्वभाव है। चैतन्य का कोई विस्तार नहीं होता इसलिए ब्रह्म या चैतन्य अनन्त कहा जाता है। "बृहतमत्वात ब्रह्म या बृहणात ब्रह्म"[1] अर्थात् जो बृहतम है वही ब्रह्म है। आचार्य शंकर के अनुसार ब्रह्म एक ऐसी सर्वव्यापी सत्ता है जो जगत् के अणु-अणु में व्याप्त है जो निराकार, निर्विकार, अविनाशी, अनादि, चैतन्य तथा आनन्द स्वरूप है।

ब्रह्म नित्य अर्थात् सभी परिच्छेदों से रहित है । ब्रह्म स्वयं प्रकाश तथा नित्य-निरतिशयानंद बोधरूप है।

शंकर के अनुसार निरपेक्ष परम सत्ता के दो रूप हैं-

क) पर या निर्गुण ब्रह्म

ख) अपर ब्रह्म या सगुण ब्रह्म।

पर ब्रह्म या निर्गुण ब्रह्म - शंकराचार्य ने निर्गुण एवं निर्विशेष ब्रह्म के स्वरुप का अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में उल्लेख करते हुए लिखा है "ब्रह्म पारमार्थिक सत्ता है, वह कूटस्थ नित्य और आकाश के समान सर्वव्यापक है। वह हर एक प्रकार के विकार से रहित, नित्य तृप्त और निरवयव है । वह स्वप्रकाश, स्वरुप, गुण-दोष विनिर्मुक्त, त्रिकालातीत, अशरीरी तथा शुद्ध संवित् चैतन्य है।"[2] ब्रह्म सजातीय,विजातीय और स्वगत भेद रहित है । पर ब्रह्म अपने स्वरुप में निर्गुण, निराकार, निर्विशेष तथा निरुपाधिक है ।

तथापि, इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि वह कुछ नहीं है। ब्रह्म में किसी गुण को स्वीकार न करने का अर्थ उसके अस्तित्व या सत् को अस्वीकार करना नहीं है वस्तुतः जो कुछ भी अस्तित्ववान् दिखाई देता है, वह सब स्वयं ब्रह्म का ही अस्तित्त्व है ।

वह सदा स्वतंत्र अस्तित्ववान् है, इसलिए केवल वही सत् है । वह समस्त दृश्य जगत् का मूल स्त्रोत आधार और आश्रय है।"[3] सब वस्तुओं में समान रूप से प्रकाशित होता है। वह हम सबका सर्वव्यापी आत्मा है।"[4] ब्रह्म सम्पूर्ण विशेष धर्मो से रहित है। इसलिए ब्रह्म का निर्वाचन करना उसे बुद्धि विकल्पों में सीमित करना है । मन-वाणी का अविषय एवं अद्वैत होने के कारण वेदान्त ग्रन्थों में "नेति नेति"[5] रूप से निर्दिष्ट किया गया है । नेति नेति का अर्थ है कि तत्त्व बुद्धिग्राह्य न होने के कारण विकल्प प्रपंच द्वारा अनिर्वचनीय है और अनिर्वचनीय होने से विशुद्ध विज्ञानात्मकस्वरुप तथा निर्विकल्प साक्षात्कार योग्य है।

अद्वैतवेदान्ती के अनुसार ब्रह्म का स्वरुप लक्षण है "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।"[6] "आनंदो ब्रह्मेति व्यजानात्।"[7]

सत् – श्रुतियों में एक अद्वितीय ब्रह्म को ही सत् बतलाया गया है। आचार्य शंकर तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्य में "सत्" शब्द की व्याख्या में कहते हैं कि – "सत्य वह है जो जिस रूप में विद्यमान है, वह उस रूप में कभी व्यभिचरित न होता हो।"[8] जिस रूप से जो पदार्थ निश्चित होता है या बुद्धि का विषय बनता है, यदि वह उस रूप को कभी न त्यागे उसका वह रूप कभी अन्यथा न हो या कभी व्यभिचरित न हो तो वह पदार्थ सत् कहलाता है एवं जिसका व्यभिचार होता हो वह सत् नहीं हो सकता। वह मिथ्या है।"[9] त्रिकालाबाध्य होना केवल ब्रह्म तत्व में ही सम्भव है, अतः वही वस्तुतः सत् एवं नित्य है।

चित् - ब्रह्म चित्स्वरुप है। चित् की ही त्रिविध अभिव्यक्तियाँ हैं- जीवन, ज्ञान, प्रकाश इनमें से जीवन वह वस्तु है, जिससे रहित वस्तु जड़ कहलाती है। चित्स्वरुपता या स्वयं प्रकाशता परम तत्त्व ब्रह्म के स्वरुप का अपरिहार्य पक्ष है। ब्रह्म ज्ञान या चित्स्वरुप है। इसका तात्पर्य है कि ब्रह्म में अज्ञान या जड़त्वादि लेशमात्र भी नहीं है। ज्ञान सम्पूर्ण अज्ञान कार्यों की व्यावृत्ति करता है। श्रुति कहती है–"ब्रह्म चिन्मात्र है, चिदेकरस है, उत्पत्ति विनाशरहित, अप्रतिहतचैतन्य है।"[10] तथा उसे प्रज्ञा रूप से जानें, प्रज्ञा ब्रह्म है, विज्ञान ब्रह्म है ज्ञान ब्रह्म ही है।" तथा वह तम् से परे है, उदय अस्त रहित प्रकाशस्वरुप है, वही प्रकाश है, उसी प्रकाश से अन्य सब कुछ प्रकाशित होता है।"[11]

आनन्द- आनन्द शब्द दुःख का ब्रह्म में निषेध करता है। यह ब्रह्म से अभिन्न है। "सुख वह अद्वितीय सत् वस्तु ही है, क्योंकि वही निरतिशय, नित्य, निरवच्छिन्न (भूमा) है।"[12]

तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्य में बहुधा आनन्द विवेचन हुआ है। ब्रह्म के स्वरूपभूत आनन्द को विषयानन्द से उत्कृष्ट परम स्तर का कहा गया है। लौकिक सुख की सीमाओं से रहित परम आनन्द को परमात्मा से अभिन्न परिपूर्ण एवं स्वाभाविक बताया गया है उस आनन्द की ही छाया या आभास - रूप मात्र लौकिक आनंद –रूप में प्रकट होती है ।

अद्वैत वेदांत कि विशिष्टता है कि वह ब्रह्म को अनंत सत् और अनंत चित् के साथ अनंत आनंद भी मानता है। शंकराचार्य आनंद को ब्रह्म का गुण नहीं वरन् ब्रह्म का स्वभाव मानते है।

"आनंदो ब्रह्मेति व्यजानात्।"[13]

सत,चित ,आनंद में अवियोज्य संबंध है अर्थात ब्रह्म सच्चिदानंद है ।
तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार आनंद से ही संसार की उत्पत्ति होती है, आनंद में संसार निहित है, अंत में यह संसार आनंद में ही मिल जाता है, अतः आनंद ही ब्रह्म है ।

"आनंदाध्ययेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
आनंदेन जातानि जीवन्ति ।।
आनंदम् प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। "[14]

अपर-ब्रह्म या सगुण ब्रह्म-आचार्य शंकर के लिए निर्गुण ब्रह्म के आधार पर इस स्थावर-जंगम आनुभाविक जगत् की व्याख्या करना सम्भव नहीं हो सका इसलिए शंकर के लिए यह एक अनिवार्यता हो गई कि ब्रह्म को सगुण रूप से माना जाए ईश्वर अद्वैत वेदान्त में जगत् के नियन्ता के रूप में माया शक्ति से युक्त ब्रह्म ही है। अतः ईश्वर ब्रह्म ही है, परन्तु मायोपाधिक है।

जब शास्त्र ब्रह्म में उपाधियों, गुणों, आकारों या विशेषों का आरोप करता है तब वहाँ ब्रह्म का अर्थ अपरब्रह्म करना चाहिए। आचार्य शंकर के दर्शन में अपरब्रह्म औपाधिक होने के कारण परम सत्य तो नहीं है फिर भी अपरब्रह्म के प्रत्यय की तर्कीय एवं दार्शनिक आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता है। शंकराचार्य ने अध्यात्म की यात्रा में सगुण ब्रह्म की उपासना के सिद्धान्त को स्वीकार किया है। ईश्वर भक्ति का विषय है, किन्तु निरपेक्ष ब्रह्म ऐसा नहीं है। सगुण ब्रह्म के भक्त और साधक ईश्वर को ही प्राप्त होते हैं, किन्तु ब्रह्म को प्राप्त होने की बात बुद्धिगम्य नहीं है। सगुण ब्रह्म सारे संसार का स्वामी है। "वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और अखिल संसार का उद्भव, स्थिति और प्रलयकर्त्ता है।"[15] आचार्य शंकर के अनुसार यह सगुण ब्रह्म है, जो ब्रह्म का तटस्थ लक्षण है और व्यावहारिक दृष्टिकोण से सत् है।

ब्रह्मसूत्र में ब्रह्म में इसी लक्षण को "जन्माद्यस्य यतः" कहा गया है। इसी सूत्र का मूल स्त्रोत उपनिषद् का यह वाक्य है " निश्चय ही ये समस्त प्राणी जिससे उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिसके सहारे जीवित रहते हैं प्रयाण करते हुए जिसमें प्रवेश करते है,उस तत्त्व को जानने की इच्छा करो, वही ब्रह्म है।"[16]

शंकर के अनुसार 'जगत्' नामरूप से विभक्त, अनेकर्त्ता तथा भोक्ताओं से संयुक्त है और देश काल निमित्त से क्रिया तथा फल का आश्रय है। पारमार्थिक दृष्टिकोण से अद्वैतवेदान्त में ब्रह्म के अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है। वही शाश्वत अपरिवर्तनीय शुद्ध चेतना है। उसकी नित्य प्रतिष्ठा है और संसार का उद्भव पालन और प्रलय का ज्ञान नित्य है। उसका ज्ञान सब बाधाओं और सीमाओं से मुक्त है। उसे ज्ञान प्राप्त करने के लिए किसी इन्द्रिय या कार्य करने के लिए किसी शरीर की आवश्यकता नहीं है। वह स्वभावतः नित्यज्ञानस्वरुप है जैसे सूर्य स्वभावतः प्रकाशस्वरुप है। "ईश्वर अपने स्वरुप का नाश किए बिना ही सृष्टि की उत्पत्ति करता है, इसलिए उसे अक्षर कहा है।"[17] वह अन्तर्यामी है। "समग्र संसार का मूल स्त्रोत स्वयं होने के कारण ब्रह्म में सर्वज्ञता, नित्यता, सर्वव्यापकता, सर्वशक्तिमता, सर्वात्मभाव तथा ऐसे ही अन्य गुण उसमें स्वीकार किए जाते हैं।"[18] सब परिमाणों का कारण होने में ही उसकी सर्वशक्तिमत्ता निहित है। वह सत्यसंकल्प है, क्योंकि समग्र संसार के उद्भव, पालन और प्रलय की निर्विरोध शक्ति उसे प्राप्त है। ईश्वर वैयक्तिक है जबकि ब्रह्म जो निरुपाधि सत्ता है व्यक्तित्वातीत कहा जा सकता है। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय का भेद जिसके बिना ईश्वर की प्रकल्पना असम्भव है, ब्रह्म की स्थिति में पूर्णतः अनुपलब्ध है। सगुण ब्रह्म ही कर्मफलदाता है। जो जीवों के पाप-पुण्य के अनुसार उन्हें फल देता है। वह हमारे सब कर्मों और उनके फलों को जानता है, किन्तु वह उनसे अप्रभावित रहता है। फिर भी वह हमारा अन्तर्यामी एवं प्रेरक है। वह अपने असीम ज्ञान के द्वारा यह सब करने में समर्थ है। शंकर सगुण ब्रह्म को नारायण, आदि नामों से सम्बोधित करते हैं। यह विश्वास किया जाता है कि भक्तों की रक्षा के लिए और दुष्टों के विनाश के लिए ईश्वर करुणावश पृथ्वी पर अवतार लेता है।

ब्रह्म और जगत् - अद्वैतवेदान्त में ब्रह्म ही निर्गुण, निर्विशेष, अद्वितीय तत्त्व हैं। उपनिषदों का कथन है कि ब्रह्म ही

एकमात्र परमार्थ सत्य है उससे व्यतिरिक्त अन्य वस्तु का अभाव सर्वथा तथा सर्वदा वर्तमान है। शंकर के अनुसार ईश्वर पूर्ण है और अनेक आश्चर्यजनक शक्तियों से सम्पन्न है, आप्तकाम है, फिर जगत् की उत्पत्ति क्यों करता है? शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्म ही जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है वह बिना किसी उपादान, उपकरण, अभिप्रेरणा, पक्षपात तथा प्रयोजन के संसार की रचना केवल लीला के लिए करता है। यह उसका स्वभाव ही है, जैसे मनुष्य के शरीर में

श्वास प्रश्वास चलते रहते हैं उसी प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति और विनाश होता रहता है।[19] शंकर का मत है कि यह विश्व एक सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् परमात्मा के सचेतन संकल्प की अभिव्यक्ति है। वह विश्व अपने कारण सगुण ब्रह्म या ईश्वर से अभिन्न है। दूसरे कार्य के रूप में किन्तु विश्व की अपने कारण के साथ अभिन्नता का अर्थ तादात्म्य नहीं है। कारण यद्यपि सब कार्यों में व्याप्त है फिर भी उनसे परे है। अतः कार्य से भिन्न है शंकर का कहना है कि विश्व का कारण विश्व से भिन्न है, विश्व चाहे अच्छा हो या बुरा, किन्तु ईश्वर पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह निर्विकार रहता है। इस प्रकार ब्रह्म ही सत्य है। जगत् सत्य नहीं है, क्योंकि सत्यता की कसौटी है कि जो जिस रूप में हो उसका कभी व्यभिचार नहीं होना चाहिए और उसे त्रिकालाबाधित होना चाहिए। ब्रह्म की विशुद्ध सत्ता के अतिरिक्त जगत् की सत्ता नहीं है। अद्वैत वेदान्त में पारमार्थिक ,व्यवहारिक और प्रातिभासिक ये तीन प्रकार की सत्ताएँ मानी गई है। जगत् की व्यवहारिक सत्ता है।

शंकर कहते हैं कि जगत् ब्रह्म-विवर्त है परिणाम नहीं। ब्रह्म-अविकृत रहते हुए भी जगत् रूप कार्य का कारण है। यह तथ्य सर्प रज्जू दृष्टान्त द्वारा समझा जा सकता है। भ्रमावस्था में रज्जू में प्रतीत होने वाला सर्प रज्जू के वास्तविक परिणाम नहीं है अपितु रज्जू का विवर्त है।[20] उनके अनुसार ब्रह्म से जगत् की वास्तविक उत्पत्ति नहीं होती, बल्कि जगत् ब्रह्म का अविद्याजन्य (माया) आभास है। शंकर के अनुसार यद्यपि यह विश्व ब्रह्म पर आधारित माना जाता है, किन्तु अनिर्वचनीय माया अपनी आवरण और विक्षेप शक्ति से ही इस जगत की उत्पत्ति करती है।

इस प्रकार सिद्ध है कि शुद्ध चैतन्य ब्रह्म एवं जगत् एक ही है अज्ञान, अविद्या, माया के कारण भिन्न प्रतीत होता है।

ब्रह्म एवं जीव - देहस्थ आत्मा जीव है। शंकर ने जीव की जीवता को स्पष्ट करते हुए कहा है कि जब तक बुद्धिरूपी उपाधि के साथ जीव का सम्बन्ध रहता है तभी तक जीव का जीवत्व एवं संसारित्व है।[21]

पारमार्थिक दृष्टि से जीव एवं ब्रह्म में कोई भेद नहीं। ब्रह्म एवं जाव शुद्ध चैतन्य स्वरूप होने के कारण तत्त्वतः एक है। उसमें प्रतीयमान भेद औपाधिक होने के कारण मिथ्या है। जब तक जीव अविद्याग्रस्त एवं प्रपञ्च में निमग्न है तब तक वह अपने यथार्थ स्वरूप से विस्मृत रहता है, किन्तु ज्यों ही श्रुति उसे मोहनिद्रा से जगा देती है, उसे आत्मस्वरूप का बोध हो जाता है अविद्या के नष्ट होते ही अहंकार, ममकार, जीवत्व, कर्तृत्व और भोक्तृत्व आदि की मिथ्या कल्पनाएँ भी विलीन हो जाती हैं। इस प्रकार जीव-ब्रह्मैक्य ज्ञान हो जाता है।

निष्कर्ष- अद्वैत वेदांत में ब्रह्म को निर्गुण और निर्विशेष और समस्त भेदों से रहित माना गया है किंतु दूसरी तरफ ब्रह्म सगुण भी है और हम यह मानते हैं कि ब्रह्म से ही जगत् की उत्पत्ति होती है। ब्रह्म को ही ईश्वर माना गया है और ब्रह्म ही सर्वाधिक शक्तिशाली है। इस जगत् में समस्त जीवों के कर्म के अनुसार फल देने वाले और इस सृष्टि के निर्माता भी ब्रह्म ही है, वह ही इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और अंत का कारण है ।इस प्रकार सिद्ध होता है कि निर्गुण एवं सगुण, निर्विशेष एवं सविशेष, पर एवं अपर ब्रह्म, ईश्वर तथा जीव में तात्त्विक दृष्टि से कोई भेद नहीं। शंकर का ब्रह्मवाद एक ऐसे चैतन्य की सत्ता में विश्वास रखता है जिसके विवर्त के रूप में स्थित प्रपञ्चात्मक जगत् , परमार्थतः अपने सम्पूर्ण मायाजाल सहित मिथ्या है।

संदर्भ सूची :

1. तैत्तिरीयोपनिषद्, शांकर भाष्य, पृ0-18.
2. परमार्थसत्यं ब्रह्म ।शां0भा0तै0उप02/62.

3. .. इदं तु पारमार्थिकं कूटस्थनित्यं... ब्रह्मसूत्र शां0भा0 ¼.
4. शां0 भा0छान्दो0 6/8/4.
5. परंब्रह्म आत्मात्मनः सर्वभूतानां च| शां0भा0 एतरेय0 2/1.
6. बृहदा0 उप0 3 / 1 / 26.
7. यद्रूपेण यन्निश्चितं तद्रूपं न व्यभिचरति तत्सत्यम्। शां0 भा0तै0 उप0 2/1.
8. यद्रूपेण निश्चितं यतद्रूपं व्यभिचरदनृतमित्युच्यते। अतो विकारोनृतम्। शां0 भा0तै0 उप0 2/1.
9. विज्ञानमानन्दं ब्रह्म। बृह0उप0 3/1/28.
10. आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्। श्वेता0 3/8.
11. यो वै भूमा तत्सुखम्।
12. किमानन्दो विषयविषयिसम्बंधजनितो इति। शां0 भा0तै0 उप0 2/8/4.
13. तैतिरीय उपनिषद् -3/6/1.
14. तैतिरीय उपनिषद् –3/6/1.
15. सर्वज्ञं तद् ब्रह्म । मुण्डक उप0 1/1/9.
16. ब्र0शां0भा0 1/1/5.
17. यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्तभसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्मेति । तै0उप0 3/1/1.
18. बृहदा0 शां0भा0 3/2/9.
19. यथा चोच्छवासप्रश्वासादयोऽनभिसंधाय बाह्यं किंचित्प्रयोजनं स्वभावादेव संभवति,.....केवलं लीलारूपा प्रवृत्तिर्भविष्यति। ब्र0सू0 शां0 भा0 2/1/33.
20. स तन्यतोऽन्यथा प्रथा विकार इत्युदीरितः।
    अतत्वतोऽन्यथा प्रथा विवर्त इत्युदाहृतः। चेदान्त सार, पृ0-62.
21. जीवो ब्रह्मैव नापरः, एको ब्रह्म द्वितीयोनास्ति। ब्र0सू0 शां0 भा0 2/1/11.

•